विचार बिन्दु

नम्रता और खुदा के खौफ से इज्जत और जिन्दगी मिलती है। –सुलेमान

राजस्थान हेरिटेज को बचाना है तो हवेलियों को पुनर्जीवित करना होगा

राजस्थान की पहचान केवल रेगिस्तान, किलों, महलों और झीलों से नहीं है। यह प्रदेश अपनी हवेलियों, उनकी भित्तिचित्र कला, जालीदार खिड़कियों, बड़े आँगनों, नक्काशीदार दरवाजों और स्थानीय वास्तुकला के कारण भी विश्व में अलग पहचान रखता है। शेखावाटी, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और उदयपुर जैसे क्षेत्रों की हवेलियाँ केवल पुराने निर्माण नहीं हैं; ये व्यापार, संस्कृति, सामाजिक जीवन, कला और स्थापत्य की जीवंत गवाह हैं। लेकिन आज इनमें से अनेक हवेलियाँ उपेक्षा, जीर्ण-शीर्णता, विरासत के अधिकारों में विवाद, बदलती जीवनशैली और व्यावसायिक दबाव के कारण खतरे में हैं। राजस्थान की विरासत को वास्तव में बचाना है, तो हवेलियों को केवल संग्रहालय बनाकर बंद कर देना पर्याप्त नहीं होगा। उन्हें जीवित रखने के लिए उनका पुनर्जीवन आवश्यक है, ताकि वे फिर से लोगों के जीवन, आजीविका और सांस्कृतिक गौरव से जुड सकें।

हवेली शब्द केवल एक बड़े घर के लिए प्रयोग नहीं होता। राजस्थान की हवेलियाँ सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास के जीवंत दस्तावेज हैं। शेखावाटी की हवेलियों में व्यापारियों की समृद्धि, उनकी यात्राएँ, धार्मिक आस्था, स्थानीय रीति-रिवाज और कलात्मक संवेदनशीलता दिखाई देती है। दीवारों पर बने चित्रों में कृष्ण लीला, रामायण, रामायण के पात्र, राजा-महाराजा, अंग्रेजी शासन के दृश्य, रेलगाडियाँ, हवाई जहाज, विदेशी शहर और तत्कालीन समाज के अनेक पहलू दिखाए गए हैं। ये चित्र केवल सजावट नहीं हैं; ये उस युग की सोच, आकांक्षाओं और सांस्कृतिक परिवर्तन को दर्शाते हैं।

हवेलियों की वास्तुकला भी अत्यंत विशिष्ट है। आँगन, बारादरी, झरोखे, चौक, बैठक, रसोई, भंडारगृह, सीढ़ियाँ, छत और द्वार-हर हिस्सा अपने समय की जीवनपद्धित को दर्शाता है। गर्मी से बचाव के लिए मोटी दीवारें, हवा के संचार के लिए झरोखे, धूप और छाया के उपयोग हेतु आँगन तथा वर्षा जल के प्रबंधन हेतु विशेष ढाँचे इन इमारतों में प्रयोग हुए हैं। इस दृष्टि से हवेलियाँ परंपरागत ज्ञान, पर्यावरण के अनुकूल निर्माण और स्थानीय शिल्प कौशल का अमूल्य भंडार हैं। इन्हें ढहाने या आधुनिक संरचनाओं से बदलने का अर्थ केवल पुरानी इमारत खोना नहीं, बल्कि एक पूरी सभ्यता की स्मृति मिटाना है।

राजस्थान की अनेक हवेलियाँ आज गंभीर संकट से गुजर रही हैं। सबसे बडा कारण उपेक्षा है। जिन हवेलियों में पहले परिवार रहते थे, वहाँ अब लोग नहीं रहते। पलायन, शहरों की ओर प्रवास, परिवारों का बँटना और संयुक्त परिवार प्रणाली का कमजोर होना इन इमारतों को खाली करता गया है। खाली भवनों में रखरखाव नहीं होता, छतें टपकती हैं, दीवारों में नमी घुसती है, लकड़ी के दरवाजे और खंभे कीट से प्रभावित होते हैं तथा भित्तिचित्र धीरे-धीरे मिटते जाते हैं।

दूसरा कारण विरासत संपत्ति के अधिकारों को लेकर पारिवारिक विवाद हैं। कई हवेलियों में अनेक उत्तराधिकारी होते हैं, जिससे निर्णय लेना कठिन हो जाता है। कोई रखरखाव करने को तैयार नहीं होता, कोई भवन को बेचना चाहता है और कोई उसे व्यावसायिक उपयोग में लाना चाहता है। इस अनिश्चितता के बीच हवेली बिना देखभाल के छूट जाती है। शेखावाटी के सीकर जिले में ही 272 हवेलियों में 10 हवेलियाँ विवाद के दायरे में बताई गई हैं, जबकि 46 जर्जर अवस्था में हैं। यह आँकड़ा बताता है कि समस्या केवल पैसे की नहीं, बल्कि स्वामित्व, जिम्मेदारी और प्रशासनिक समन्वय की भी है।

तीसरा कारण भूमि और व्यावसायिक दबाव है। शहरों का विस्तार, दुकानों और वाणिज्यिक परिसरों की माँग, तथा नए निर्माण की लालसा पुरानी हवेलियों को खतरे में डालती है। कुछ स्थानों पर हवेलियों को तोड़कर आधुनिक भवन बनाए जा रहे हैं। इससे न केवल ऐतिहासिक इमारत समाप्त होती है, बल्कि पूरे मोहल्ले का चरित्र भी बदल जाता है। जब एक-एक हवेली गिरती है, तो उसके साथ स्थानीय पहचान, पर्यटन की संभावना और पीढ़ियों का ज्ञान भी समाप्त होता है।

चौथा कारण यह है कि संरक्षण को अक्सर केवल सरकार का काम मान लिया जाता है। वास्तव में हवेलियों का संरक्षण साझा जिम्मेदारी है। सरकार, स्थानीय निकाय, स्वामी, व्यापारिक संस्थाएँ, पर्यटन उद्योग, कारीगर, विशेषज्ञ और स्थानीय समाज-सभी को मिलकर काम करना होगा। बिना स्थानीय भागीदारी के कोई भी योजना दीर्घकालिक सफल नहीं हो सकती।

हवेलियों का पुनर्जीवन केवल पुरानी दीवारों की मरम्मत नहीं है। इसका अर्थ है हवेली को उसकी मूल पहचान बनाए रखते हुए एक उपयोगी, सुरक्षित और आर्थिक रूप से टिकाऊ इकाई बनाना। एक खाली और जर्जर हवेली को हेरिटेज होमस्टे, बुटीक होटल, संग्रहालय, कला दीर्घा, पुस्तकालय, सांस्कृतिक केंद्र, शिल्प बाजार, कार्यशाला स्थल, कैफे, प्रशिक्षण केंद्र या पर्यटन हब में बदला जा सकता है। ऐसा पुनर्उपयोग हवेली को जीवित रखता है और उसके रखरखाव के लिए नियमित आय का स्रोत भी बनाता है।

उदाहरण के लिए, एक हवेली के मुख्य आँगन को सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। पीछे के कक्षों को कलाकारों के लिए निवास या कार्यशाला बनाया जा सकता है। ऊपरी हिस्से को होमस्टे में बदला जा सकता है, जबकि भूतल पर स्थानीय हस्तशिल्प, कपड़ा, मिठाई, मसाले या पुस्तकों की दुकान हो सकती है। इससे पर्यटक को अनुभव मिलेगा, स्थानीय लोगों को रोजगार मिलेगा और हवेली को नियमित देखभाल का साधन मिलेगा। यही संरक्षण का व्यावहारिक रूप है।

शेखावाटी क्षेत्र राजस्थान की हवेली विरासत का सबसे प्रमुख केंद्र है। झुंझुनूं, सीकर और चूरू जिलों की हवेलियाँ अपने भित्तिचित्रों के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। इन्हें अक्सर खुले आकाश में कला की दीर्घा कहा जाता है। यहाँ की हवेलियाँ न केवल स्थानीय व्यापारियों की संपत्ति थीं, बल्कि उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक दृष्टि और कला-प्रेम का प्रतीक भी थीं।

पर्यटन से प्राप्त आय का एक निश्चित हिस्सा हवेली के रखरखाव में लगाया जाए। इससे हवेली अपने व्यय का एक हिस्सा स्वयं उठा पाएगी। साथ ही पर्यटन को इस तरह नियंत्रित किया जाए कि स्थानीय निवासियों के जीवन, भवन की सुरक्षा और पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव न पड़े। संरक्षण और व्यावसायिक उपयोग के बीच संतुलन ही सफल मॉडल है।

राज्य सरकार ने शेखावाटी हवेली संरक्षण योजना के तहत इस क्षेत्र की सैकड़ों हवेलियों को चिन्हित किया है। समाचार विवरणों के अनुसार 662 हवेलियाँ चिन्हित की गई हैं और कई हवेलियों को हेरिटेज वॉक, सांस्कृतिक केंद्र, कला दीर्घा, होमस्टे तथा पर्यटन केंद्र के रूप में विकसित करने की योजना है। यह पहल सराहनीय है, क्योंकि यह संरक्षण को केवल भवन की मरम्मत तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे आर्थिक और सामाजिक गतिविधि से जोड़ती है।

लेकिन योजना की सफलता तभी होगी, जब उसका क्रियान्वयन पारदर्शी, निरंतर और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप हो। केवल बोर्ड लगाने, नक्शे बनाने या घोषणाएँ करने से हवेलियाँ नहीं बचेंगी। उन्हें व्यावहारिक सहायता, तकनीकी मार्गदर्शन, कारीगरों की उपलब्धता, वित्तीय प्रोत्साहन और नियमित निगरानी चाहिए।

सरकार को हवेलियों के संरक्षण के लिए स्पष्ट नीति बनानी चाहिए। प्रत्येक जिले में हवेलियों का सर्वेक्षण हो और उन्हें उनकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा स्थापत्य महत्ता के आधार पर श्रेणीबद्ध किया जाए। जिन हवेलियों में तत्काल खतरा हो, उन्हें प्राथमिकता दी जाए। छत, दीवार, दरवाजे, खिड़कियाँ, भित्तिचित्र और नालियों की स्थिति का मूल्यांकन कर आपातकालीन मरम्मत की जाए।

सरकार हवेली स्वामियों को वित्तीय प्रोत्साहन दे सकती है। रखरखाव के लिए अनुदान, ब्याज राहत वाले ऋण, कर में छूट, सामग्री की सहायता और तकनीकी परामर्श उपलब्ध कराए जा सकते हैं। साथ ही हवेली को हेरिटेज होमस्टे या सांस्कृतिक केंद्र बनाने वालों के लिए सरल अनुमति प्रक्रिया होनी चाहिए। अत्यधिक जटिल नियम स्वामियों को निराश करते हैं और उन्हें भवन को बेचने या तोड़ने की ओर धकेलते हैं।

सरकार को स्थानीय कारीगरों को भी सक्रिय करना होगा। चूने, लाख, गेरू, लकड़ी, पत्थर और पारंपरिक चित्रकला के ज्ञान वाले कारीगरों की कमी संरक्षण की सबसे बड़ी बाधा है। इन कौशलों को प्रशिक्षण केंद्रों, स्कूलों, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों और विरासत परियोजनाओं से जोड़ा जाए। जब युवा देखेंगे कि हवेली संरक्षण से रोजगार और सम्मानजनक आजीविका मिल सकती है, तभी यह कार्य टिकाऊ बनेगा।

हवेली केवल स्वामी की संपत्ति नहीं है; वह मोहल्ले, बाजार, गली और पूरे शहर की पहचान से जुड़ी होती है। इसलिए स्थानीय समाज की भागीदारी अनिवार्य है। मोहल्ला समितियाँ, युवा संगठन, महिला समूह, विद्यालय और सामाजिक संस्थाएँ हवेली संरक्षण में भागीदार बन सकती हैं। उन्हें हवेली के इतिहास, महत्व और संरक्षण के तरीकों के बारे में जागरूक किया जाए।

विद्यालयों में विरासत शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाए। बच्चों को हवेलियों का इतिहास, भित्तिचित्रों की कहानियाँ और स्थानीय वास्तुकला से परिचित कराया जाए। इससे उनमें अपनी विरासत के प्रति गर्व और जिम्मेदारी की भावना विकसित होगी। जब स्थानीय लोग अपनी हवेली को अपना मानेंगे, तभी वे उसकी रक्षा में सक्रिय भूमिका निभाएँगे।

हवेलियों का पुनर्जीवन पर्यटन से जोड़ा जा सकता है, लेकिन यह पर्यटन जिम्मेदार और संतुलित होना चाहिए। केवल भीड़ बढ़ाना उद्देश्य नहीं होना चाहिए। पर्यटकों को हवेली के इतिहास, कला, स्थानीय जीवन और संरक्षण के महत्व से परिचित कराया जाए। हेरिटेज वॉक, गाइड सेवा, कला प्रदर्शनी, लोक संगीत, स्थानीय व्यंजन, हस्तशिल्प बाजार और कारीगरों की कार्यशालाएँ इसे समृद्ध बना सकती हैं।

पर्यटन से प्राप्त आय का एक निश्चित हिस्सा हवेली के रखरखाव में लगाया जाए। इससे हवेली अपने व्यय का एक हिस्सा स्वयं उठा पाएगी। साथ ही पर्यटन को इस तरह नियंत्रित किया जाए कि स्थानीय निवासियों के जीवन, भवन की सुरक्षा और पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव न पड़े। संरक्षण और व्यावसायिक उपयोग के बीच संतुलन ही सफल मॉडल है।

हवेलियों का पुनर्जीवन केवल सांस्कृतिक कार्य नहीं, बल्कि आर्थिक अवसर भी है। संरक्षण से निर्माण कार्य, मरम्मत, पर्यटन, आतिथ्य, कला, शिल्प, खाद्य उद्यम और स्थानीय व्यापार में रोजगार पैदा हो सकते हैं। एक संरक्षित हवेली केवल पर्यटक को आकर्षित नहीं करती, बल्कि उसके आसपास के दुकानदारों, रिक्शा चालकों, गाइडों, कारीगरों, होटल कर्मियों और किसानों को भी लाभ पहुँचाती है।

इसलिए हवेलियों को बोझ नहीं, बल्कि संपत्ति माना जाए। जब स्थानीय लोग देखेंगे कि हवेली से आय, रोजगार और सम्मान मिल रहा है, तब वे उसे बचाने के लिए स्वयं आगे आएँगे। यही संरक्षण की सबसे सशक्त भावना है। राजस्थान की विरासत को बचाना केवल किलों और महलों की दीवारों को सीमेंट से भरने का कार्य नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है-हवेलियों, उनकी कला, उनकी स्मृति और उनके सामाजिक महत्व को जीवित रखना। हवेलियाँ राजस्थान की आत्मा हैं। इनकी दीवारों पर लिखी कहानियाँ, आँगनों में बसी स्मृतियाँ और झरोखों से झाँकती परंपरा हमें यह बताती है कि हम कहाँ से आए हैं और हमारी पहचान क्या है।

यदि हम आज हवेलियों को पुनर्जीवित नहीं करेंगे, तो कल हमारी अगली पीढ़ी केवल तस्वीरों और किताबों में उन्हें देखेगी। इसलिए सरकार, समाज, स्वामी, कारीगर और पर्यटन क्षेत्र को मिलकर हवेलियों को जीवंत बनाना होगा। जब हवेलियाँ फिर से रोशनी, आवाज, व्यापार, कला और जीवन से भर जाएँगी, तभी राजस्थान की विरासत सच में सुरक्षित होगी। यही इस प्रदेश की सांस्कृतिक प्रगति और भविष्य की सबसे बड़ी गारंटी है।

–अतिथि संपादक,
अविनाश जोशी,
वरिष्ठ पत्रकार एवं कॉरपोरेट सलाहकार

धर्म और संस्कृति के उत्सवों के बीच स्त्री के समय, श्रम और स्वतंत्रता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

परंपराओं का सुनहरा पिंजराः आस्था, बाजार और स्त्री की अदृश्य जिम्मेदारियाँ



डॉ. अर्चना गोदारा

गाँव में त्योहार का दिन है। घर की एक महिला सुबह सामान्य दिनों से भी पहले उठती है। चूल्हा-चौका, पशुओं की देखभाल, बच्चों की तैयारी और घर की सफाई के बाद उसे पूजा की सामग्री जुटानी है। आज व्रत है, इसलिए उसने सुबह से कुछ खाया-पिया भी नहीं है। घर के दूसरे सदस्य त्योहार की तैयारियों और उल्लास में शामिल हैं, लेकिन आयोजन की अधिकांश जिम्मेदारी उसी के हिस्से में है। शाम को पूजा पूरी होने के बाद भी उसके काम समाप्त नहीं होते। वह अगले दिन की रसोई और घर की व्यवस्था में जुट जाती है। यह किसी एक परिवार की कहानी नहीं, बल्कि भारतीय समाज के अनेक घरों में दिखाई देने वाली एक सामान्य तस्वीर है। दिलचस्प यह है कि इस पूरे श्रम को अक्सर प्रेम, संस्कार, समर्पण और धार्मिक कर्तव्य जैसे सुंदर शब्दों में समेट दिया जाता है। शायद इसी कारण इसके भीतर छिपी असमानता पर हमारी नजर कम जाती है।

भारतीय संस्कृति में स्त्री को सम्मान देने के लिए अनेक प्रतीक और संबोधन विकसित हुए हैं। उसे गृहलक्ष्मी, अन्नपूर्णा, परिवार की मर्यादा और संस्कारों की संरक्षिका कहा गया। धार्मिक आख्यानों में उसके त्याग और तपस्या को आदर्श बनाया गया। लेकिन इस सम्मान के साथ एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था भी विकसित हुई, जिसमें परिवार की सुख-समृद्धि, पति की दीर्घायु, संतान की सुरक्षा और घर की धार्मिक परंपराओं को निभाने की जिम्मेदारी मुख्यतः स्त्री के हिस्से आती चली गई। उसे परिवार की धुरी तो बनाया गया, लेकिन इस धुरी के चारों ओर घूमते हुए उसके अपने जीवन की दिशा और आकांक्षाएँ कितनी बार पीछे छूट गईं, इस पर गंभीरता से विचार नहीं किया गया। सम्मान और जिम्मेदारी के बीच का यही अंतर इस विमर्श का मूल है।

हमारे यहाँ व्रत और त्योहार केवल धार्मिक गतिविधियाँ नहीं हैं। वे लोकजीवन, सामूहिक स्मृतियों, पारिवारिक संबंधों और सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा हैं। राजस्थान में तीज, गणगौर, करवा चौथ, अहोई अष्टमी, जीवित्पुत्रिका और विभिन्न क्षेत्रीय व्रतों की परंपरा लंबे समय से चली आ रही है। पूर्वी भारत में छठ पूजा का विशेष सांस्कृतिक और धार्मिक महत्त्व है। बिहार, झारखंड और पूर्वी उत्तर प्रदेश से शुरू होकर छठ की सार्वजनिक पहचान आज देश के अनेक महानगरों तक पहुँची है। लोकगीत, पारंपरिक प्रसाद, नदी और तालाब के किनारे सामूहिक अर्घ्य तथा परिवारों की सहभागिता इस पर्व को विशिष्ट बनाते हैं। छठ में पुरुष भी व्रत करते हैं और इसकी व्यवस्थाओं में भाग लेते हैं, इसलिए इसे केवल महिलाओं का पर्व कहना सही नहीं होगा। फिर भी अनेक परिवारों में व्रत करने वाली महिलाओं को जिस शारीरिक अनुशासन, तैयारी और पारिवारिक अपेक्षाओं से गुजरना पड़ता है, वह विचारणीय है।

छठ पूजा के दौरान कई घरों में व्रती महिला को विशेष आहार संबंधी नियमों का पालन करना पड़ता है। दूसरी ओर, सामूहिकता और सहयोग की सुंदर परंपरा भी दिखाई देती है। पड़ोस की महिलाएँ एक-दूसरे की सहायता करती हैं, परिवार के पुरुष घाट की व्यवस्था में योगदान देते हैं और पूरा समुदाय एक साथ पर्व मनाता है। यही वह अंतर है जिस पर ध्यान देना आवश्यक है। जब आयोजन सामूहिक श्रम से होता है तो परंपरा सामाजिक एकता का माध्यम बनती है, लेकिन जब उसका अधिकांश बोझ एक ही व्यक्ति या वर्ग पर छोड़ दिया जाता है तो वही परंपरा असमान जिम्मेदारी का रूप लेने लगती है।

करवा चौथ का उदाहरण भी इस बदलते सामाजिक स्वरूप को समझने में उपयोगी है। पहले अनेक परिवारों और क्षेत्रों में यह अपेक्षाकृत घरेलू धार्मिक परंपरा के रूप में मनाया जाता था। अब कई शहरी और अर्धशहरी क्षेत्रों में इसके आयोजन ने सार्वजनिक उत्सव का रूप भी ले लिया है। सामूहिक पूजा, विशेष आयोजन, सजे हुए बाजार, डिजाइनर परिधान, आभूषण, मेहंदी, उपहार और सोशल मीडिया पर तस्वीरों का प्रदर्शन इस पर्व की समकालीन पहचान का हिस्सा बन गए हैं। यह बदलाव अपने आप में न तो पूरी तरह गलत है और न ही किसी परंपरा की स्वाभाविक सांस्कृतिक यात्रा को नकारा जा सकता है। लेकिन प्रश्न यह है कि इस विस्तार में स्त्री की आस्था के साथ बाजार की अपेक्षाएँ भी क्यों जुड़ती जा रही हैं? अब व्रत रखने के साथ-साथ विशेष दिखना, विशेष पहनना, विशेष सजना और उत्सव की एक खास तस्वीर प्रस्तुत करना भी कई बार सामाजिक अपेक्षा बन जाता है।

बाजारीकरण ने त्योहारों को केवल धार्मिक आयोजन नहीं रहने दिया, बल्कि उन्हें उपभोग और प्रदर्शन की अर्थव्यवस्था से भी जोड़ दिया है। विज्ञापन, टेलीविजन, फिल्में, सोशल मीडिया, ऑनलाइन खरीदारी और बाजार के प्रचार ने त्योहारों के स्वरूप को प्रभावित किया है। गणगौर और तीज पर पारंपरिक वस्त्रों और आभूषणों से लेकर करवा चौथ के विशेष उपहारों और छठ के लिए सजावटी पूजा सामग्री तक बाजार ने नए उपभोक्ता अवसर विकसित किए हैं। इसमें महिलाओं की पसंद, रचनात्मकता और आर्थिक भागीदारी के अवसर भी हैं, लेकिन यह भी देखना होगा कि कहीं उत्सव की खुशी को खरीदारी की क्षमता से तो नहीं मापा जाने लगा है।

लेकिन इन सभी परिवर्तनों के बीच सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न स्त्री के समय और श्रम का है। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के समय उपयोग सर्वेक्षण (टाइम यूज सर्वे 2024) के आँकड़े इस असमानता को समझने का ठोस आधार देते हैं। सर्वेक्षण के अनुसार, घरेलू सदस्यों के लिए अवैतनिक घरेलू सेवाओं में भाग लेने वाली महिलाओं ने औसतन प्रतिदिन 289 मिनट खर्च किए, जबकि पुरुषों के लिए यह समय केवल 88 मिनट था। इसी तरह, घरेलू सदस्यों की देखभाल से जुड़े कार्यों में महिलाओं का औसत समय 137 मिनट और पुरुषों का 75 मिनट रहा। ये आँकड़े छह वर्ष और उससे अधिक आयु के उन प्रतिभागियों के औसत समय को दर्शाते हैं जिन्होंने संबंधित गतिविधियों में भाग लिया। यह अंतर केवल घरेलू काम का नहीं, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारियों के असमान वितरण का भी संकेत है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो यह स्थिति पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना और लैंगिक श्रम विभाजन से जुड़ी है। स्त्री के घरेलू श्रम को उसका कर्तव्य माना जाता है, जबकि पुरुष द्वारा उसी काम में सहयोग करने को विशेष योगदान के रूप में देखा जाता है। यही मानसिकता त्योहारों और धार्मिक आयोजनों में भी दिखाई देती है। इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष भी उतना ही गहरा है।

ग्रामीण समाज में इस स्थिति के कई सामान्य उदाहरण मिलते हैं। खेतों में काम करने वाली महिला हो या घर और पशुपालन की जिम्मेदारी संभालने वाली गृहिणी, त्योहार के अवसर पर उससे अपेक्षा की जाती है कि वह सभी परंपराओं का निर्वहन भी करे और घर की व्यवस्था भी बनाए रखे। यदि वह किसी दिन अस्वस्थ है, थकी हुई है या व्रत नहीं रखना चाहती, तो कई बार उसे परिवार के ही सदस्यों की टिप्पणियाँ सुननी पड़ती हैं। कुछ महिलाएँ स्वयं भी यह मानने लगती हैं कि व्रत छोड़ना उनके संस्कारों या मातृत्व के प्रति समर्पण में कमी का संकेत है। इस पूरी व्यवस्था में स्त्री का भावनात्मक श्रम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि त्योहारों और परंपराओं के नाम पर स्त्री के निजी समय का उपयोग किस प्रकार होता है। यह कहना उचित नहीं होगा कि हर धार्मिक गतिविधि स्त्री के विकास में बाधा है। अनेक महिलाओं के लिए ये आयोजन सामाजिक मेलजोल, आत्मीयता और सांस्कृतिक पहचान का माध्यम भी हैं। लेकिन यह अवश्य विचारणीय है कि इन गतिविधियों में भागीदारी कितनी स्वैच्छिक है और कितना हिस्सा सामाजिक अपेक्षाओं से निर्धारित होता है। इस विस्तार से लोकसंस्कृति को नई पहचान मिली है, प्रवासी समुदायों को अपनी जड़ों से जुड़े रहने का अवसर मिला है और कई छोटे व्यवसायों को भी आजीविका के नए साधन मिले हैं। लेकिन इसके साथ यह सवाल भी जरूरी है कि सांस्कृतिक विस्तार के बीच मूल भावना कहीं प्रदर्शन और प्रतिस्पर्धा में तो नहीं बदल रही? क्या त्योहार की सफलता अब इस बात से तय होने लगी है कि किसने कितना खर्च किया, किसने कितनी भव्य सजावट की और किसकी तस्वीर को सोशल मीडिया पर अधिक प्रशंसा मिली?

यहाँ एक संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है। छठ पूजा में सामूहिकता, प्रकृति और सूर्य के प्रति कृतज्ञता का भाव है। गणगौर में लोकजीवन और स्त्री की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। तीज में सावन, प्रकृति, गीत और स्त्रियों के आपसी संवाद की परंपरा है। करवा चौथ में भी अनेक महिलाओं के लिए निजी आस्था और वैवाहिक भावनाएँ जुड़ी हुई हैं। इन परंपराओं को केवल पितृसत्ता या बाजार के चश्मे से देखना उनके व्यापक सांस्कृतिक अर्थ को सीमित कर देगा। लेकिन इनके नाम पर स्त्री से एकतरफा त्याग की अपेक्षा करना भी उचित नहीं है। परंपरा का सम्मान तभी सार्थक है जब उसके निर्वहन में व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा और गरिमा बनी रहे।

अब समय है कि परिवार और समाज इस जिम्मेदारी को नए सिरे से समझें। यदि पत्नी पति की लंबी उम्र के लिए व्रत रखती है, तो पति भी उसके स्वास्थ्य और जीवन के प्रति समान संवेदनशीलता क्यों न दिखाए? यदि माँ संतान के लिए उपवास करती है, तो पिता भी परिवार की धार्मिक और घरेलू जिम्मेदारियों में बराबर भागीदारी क्यों न निभाए? त्योहारों की तैयारी, पूजा की व्यवस्था और पारिवारिक आयोजन केवल महिलाओं का दायित्व क्यों बने रहें? सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि किसी महिला को व्रत रखने या न रखने का निर्णय बिना भय, दबाव और अपराधबोध के लेने का अधिकार होना चाहिए।

किसी संस्कृति की जीवंतता इस बात से नहीं मापी जाती कि उसकी परंपराओं का कितनी कठोरता से पालन किया जा रहा है, बल्कि इस बात से मापी जाती है कि वह बदलते समय में अपने भीतर कितनी मानवीयता और समानता विकसित कर पा रही है। स्त्री को केवल त्याग और तपस्या की प्रतिमा बनाकर सम्मानित करना पर्याप्त नहीं है। उसे अपने समय, श्रम, स्वास्थ्य, शिक्षा और सपनों पर अधिकार देना भी उतना ही आवश्यक है। परंपराएँ बची रहनी चाहिए, लेकिन उनके नाम पर असमानताएँ नहीं। आस्था बनी रहनी चाहिए, लेकिन उसके भीतर भय का स्थान नहीं होना चाहिए। त्योहार मनाए जाने चाहिए, लेकिन उनकी खुशी का भार किसी एक वर्ग के कंधों पर नहीं होना चाहिए। आखिर स्त्री भी उसी समाज की स्वतंत्र नागरिक है, जिसके लिए वह जीवन भर परंपराओं और रिश्तों को सँभालती आई है। उसे सुनहरे पिंजरे में सम्मानित करने के बजाय खुले आकाश में अपनी इच्छानुसार उड़ने का अवसर देना ही किसी भी प्रगतिशील संस्कृति की वास्तविक पहचान होगी।

–डॉ. अर्चना गोदारा,
सहायक आचार्य, लेखक

सब कुछ मिला एक तू ना मिली, शांति की तलाश में 41 साल से चल रही बैचेन यात्रा



कश्मीर यादव

सब कुछ है, लेकिन कुछ और पाने की तड़प खींच लाती है। किशोरीलाल को सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त हुए 6 साल हो चुके हैं, बेटा-बेटी की शादी कर चुके हैं, और वे दोनों कस्टम विभाग में निरीक्षक जैसे प्रतिष्ठित पद पर कार्यरत हैं। कोई ईएमआई नहीं देनी, मकान में नया काम नहीं चलाना, लेकिन फिर भी किशोरीलाल बेचैन हैं। उनके पास केवल 7 दिन का स्टॉक बचा है और दानदाता अब आने वाली 1 तारीख को सैलरी आने के बाद ही सहयोग दे पाएंगे। बीच के 4-5 दिन के स्टॉक का प्रबंध करने के लिए किशोरीलाल के पास कई योजनाएं हैं और वे उन्हीं पर मंथन कर रहे हैं। जयपुर जिले के दो दर्जन से ज्यादा कुत्ते व बिल्लियां और हजारों चिड़िया व कबूतर किशोरीलाल पर निर्भर हैं।

यह कहानी जून 1985 से शुरू होती है। शास्त्रीनगर स्थित राजकीय वक्ष एवं टीबी अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में भर्ती किशोरीलाल के परिजनों को प्रख्यात चिकित्सक डॉ. जैन ने जवाब दे दिया था, और उस जवाब को किशोरीलाल ने परिजनों की डूबती आंखों में पढ़ लिया था। किशोरीलाल को खून की उल्टियां हो रही थीं, ऑक्सीजन की नली से सांस चल रही थी, लेकिन चेतना बाकी थी। उस रात के बारे में किशोरीलाल ने बताया कि स्वप्न में उनके दादा गोपाल दिखे और बोले कि "कुछ काम बाकी है, जो तुझे करना है" और स्वप्न टूट गया। दो दिन बाद डॉ. जैन हैरान थे कि चिकित्सा विज्ञान जिसे कुछ दिनों का मेहमान मान रहा था, उसके मेडिकल पैरामीटर्स में आश्चर्यजनक सुधार हो गया था।

इसके कुछ दिनों बाद डिस्चार्ज होकर लौटे किशोरीलाल का जीवन के प्रति दृष्टिकोण पूरी तरह बदल चुका था। सपने में दिखे दादा की छवि धूमिल होती गई, लेकिन बेचैनी बढ़ती गई। एक दिन अचानक संदेश के सूत्र को पकड़कर उन्होंने जूट के थैले में आटा और बची हुई रोटियां रखीं। आटा चींटियों को और रोटियां सड़क के बेसहारा कुत्तों को खिलाईं। आज 41 बरस बीत चुके हैं, लेकिन बेचैनी बरकरार है-बेचैनी ये कि कोई भूख से बिलख रहा है तो दूसरा चैन से कैसे सो सकता है। दूसरा इंसान ही हो, ये किसने बताया; जीव-जंतु भी तो हो सकते हैं।

किशोरीलाल शाम 3 बजे शासन सचिवालय में 3-4 जगह चींटियों के लिए चुग्गा और पक्षियों के लिए दाना डालते हैं, फिर सचिवालय और आसपास दानदाताओं से मदद के लिए मिलते हैं। इसके बाद चांदपोल मोक्षधाम में चुग्गा और दाना डालते हैं। रात 1 से 2 बजे के बीच शास्त्रीनगर और इसके आसपास के ढाबों पर जाते हैं और वहां बची हुई रोटियों को थैले में भरकर स्कूटर से सड़कों पर उसकी तलाश कर रहे कुत्ते-बिल्लियों को रोटी खिलाते हैं, और फिर घर आकर सो जाते हैं। सुबह सूरज निकलने से पहले निकले 66 वर्षीय किशोरीलाल आधी रात के बाद घर पहुंचते हैं।

कुछ लोग दबी जुबान फुसफुसाते थे कि दान का हिसाब कहां है, आज के जमाने में कौन मूक पक्षियों और जानवरों के लिए दर-दर भटकता है। यह फुसफुसाहट प्रतिध्वनित होकर किशोरीलाल के कान और फिर दिल तक पहुंची। अब वे हर खरीद का पुख्ता बिल हर समय साथ रखते हैं, जिसमें खरीद का समय और दुकानदार के कॉन्टैक्ट नंबर तक लिखे होते हैं।



किशोरीलाल

मूलतः शिवदासपुरा निवासी किशोरीलाल का नाहरी का नाका में मकान है। उनकी बेटी दीपिका मुंबई से और बेटा शंकर आगरा से जब भी घर आते हैं, सहयोग राशि भी देते हैं और सलाह भी कि उम्र के इस पड़ाव पर कुछ आराम की भी जरूरत है। लेकिन फिर वही बेचैनी उठती है, बढ़ती है और वे घर से निकल पड़ते हैं-दानदाताओं और मूक जीव-जंतुओं के बीच सेतु का काम करने के लिए।

यह बेचैनी उन्हें परमात्मा की उस अनकही आज्ञा की याद दिलाती है, जो हर समर्थ मनुष्य को दी गई है। भारतीय संस्कृति में नर सेवा नारायण सेवा और जीव दया को ही सबसे बड़ा धर्म माना गया है। मूक होना इन बेजुबान जीवों की कमजोरी नहीं, बल्कि उस परमपिता परमेश्वर का एक दिव्य संकेत है उन मनुष्यों के लिए, जिन्हें ईश्वर ने वाणी, शक्ति और संवेदना दी है। क्योंकि उस सर्वशक्तिमान ईश्वर के दरबार में तो हम सभी मूक हैं, और बिना किसी स्वार्थ के उसके बनाए इन जीवों की क्षुधा शांत करना ही सच्ची भक्ति और सर्वोच्च प्रार्थना है।

–कश्मीर यादव,
मीडिया एवं समाचार विशेषज्ञ

राशिफल शुक्रवार 27 नवम्बर, 2026



पंडित अनिल शर्मा

मार्गशीष मास, कृष्ण पक्ष, तृतीया तिथि, शुक्रवार, विक्रम संवत-2083, आर्द्रा नक्षत्र दिन 3:09 तक, शुभ योग रात्रि 11:52 तक, विष्टि करण प्रातः 9:49 तक, चन्द्रमा आज मिथुन राशि में संचार करेगा।

ग्रह स्थिति– सूर्य-वृश्चिक, चन्द्रमा-मिथुन, मंगल-सिंह, बुध-तुला, गुरू-सिंह, शुक्र-तुला, शनि-मीन, राहु-कुम्भ, केतु-सिंह

आज सर्वार्थ सिद्धि योग दिन 3:09 से सूर्योदय तक है। आज भद्रा प्रातः 9:49 तक है। आज चतुरथी व्रत, सौभाग्य सुन्दरी व्रत है। आज चतुरथी तिथि का क्षय हुआ है।

श्रेष्ठ चौघड़िया– चर सूर्योदय से 8:18 तक, लाभ अमृत 8:18 से 10:55 तक, शुभ 12:14 से 1:33 तक, चर 4:10 से सूर्यास्त तक।

राहुकाल– 10:30 से 12:00 तक, सूर्योदय 6:59, सूर्यास्त 5:29



मेष
परिवार में मन को प्रसन्न करने वाले संदेश प्राप्त होंगे। आज परिजनों के सहयो